हिन्दी का अँग्रेज़ीकरणः आधिकारिक दृष्टिकोण

मुकुल प्रियदर्शिनी

पिछले कुछ दशकों में बेहद अस्वाभाविक और बनावटी किस्म की हिन्दी विकसित हो गई है, जो अकसर संवाद के लिहाज़ से सहज नहीं होती। यह बात प्रशासनिक तथा अकादमिक, दोनों क्षेत्रों में इस्तेमाल की जाने वाली हिन्दी के बारे में सही है। इसके अलावा, टीवी तथा अखबारों में छपने वाली सूचनाओं और विज्ञापनों में भी इसी तरह की हिन्दी का उपयोग किया जाता है। आम लोग किसी भी भाषा की योग्यता के तभी कायल होते हैं जब वह अनौपचारिक तथा औपचारिक क्षेत्रों में उनकी ज़िन्दगी का हिस्सा बन जाए। हिन्दी को इस पड़ाव तक पहुँचाने के लिए सार्वजनिक, प्रशासनिक तथा अकादमिक क्षेत्रों में उसकी मौजूदा शब्दावली की बेहद विवेचनात्मक समीक्षा की ज़रूरत है।

भारत जैसे भाषाई रूप से समृद्ध देश में किसी भाषा को नुकसान पहुँचा सकने वाले सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक है मानकीकरण और एकरूपता की धारणा पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर देना। इससे अस्वाभाविक और बनावटी भाषा विकसित हो जाती है जो किसी भी मूलभाषी के भाषा-भण्डार का हिस्सा नहीं होती। मानकीकरण की सनक एक ऐसे रवैये को दर्शाती है जो अलोकतांत्रिक और ज़रूरत से ज़्यादा आलोचनात्मक है क्योंकि यह भाषा के किसी एक रूप को पवित्र मानने और उसके दूसरे रूपों को अस्वीकार करने की धारणा पर आधारित होती है।

भाषा एक सदा विकसित होने वाला और बदलने वाला क्रियाकलाप है जिसके

पीछे सबसे बड़ा योगदान लोगों का होता है – उस भाषा के मूलभाषियों का। किसी भाषा की परिरेखाएँ और उसका चरित्र उस भाषा का उपयोग करने वाले लोगों द्वारा लगातार परिभाषित व पुनःपरिभाषित होते रहते हैं। औपनिवेशिक अतीत वाले क्षेत्रों में उपनिवेशकों की भाषा के शब्दों को भी खुलकर अपनाया जाता है। फिर ऐसी भी कई भाषाएँ होती हैं जिन्हें 'बोलियाँ' कहा जाता है और जो किसी भाषा की शब्दावली में वृद्धि करती हैं: लेकिन इस तथ्य को कोई मान्यता और स्वीकृति नहीं मिलती। भारत जैसे बहुभाषी देश में, जो अपने आप में एक भाषाई क्षेत्र है, स्थिति और भी दिलचस्प है: हम तमाम भाषा समूहों में भौगोलिक रूप से निकटवर्ती भाषाओं से भी शब्द ग्रहण करते हैं, यानी, अन्य भारतीय भाषाओं से और विभिन्न भाषाई परिवारों की 'बोलियों' से। यह बात हिन्दी के बारे में भी सच है जो एक बहुभाषाई परिस्थिति में स्थित है। यह परिस्थिति अँग्रेज़ी के प्रभुत्व और लोगों की उसके प्रति आकांक्षा से घिरी हुई है।

विस्तार की ज़रूरत

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि विभिन्न विषय-शाखाओं के सम्बन्ध में हिन्दी के शब्दकोष को बढ़ाने और समृद्ध बनाने की अकादमिक ज़रूरत हमेशा से ही रही है, और जब हिन्दी आधिकारिक भाषा बनी (और अँग्रेज़ी सहायक आधिकारिक भाषा बनी), तो प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए भी हिन्दी के उपयोग को बढ़ावा देना ज़रूरी हो गया। इन ज़रूरतों को पूरा

करने के लिए सरकार ने कई विभाग, निकाय और आयोग गठित किए थे जो गृह मंत्रालय और मानव संसाधन मंत्रालय का हिस्सा हैं। सरकारी एजेंसियाँ, जैसे कि केन्द्रीय वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग, हिन्दी और अन्य मुख्य भारतीय भाषाओं में तकनीकी शब्दावली, शब्दार्थिकाओं, पारिभाषिक शब्दकोषों और विश्वकोषों के ग्रन्थ निकालती रही है, जिनमें सभी विज्ञानों, सामाजिक विज्ञानों और मानविकी विषयों को तथा प्रशासनिक लेखन से सम्बन्धित शब्दावली को शामिल किया गया है।

लेकिन, पिछले कुछ दशकों में इस प्रक्रिया में बेहद अस्वाभाविक और संजीदा किस्म की हिन्दी विकसित हो गई है, जो अकसर संवाद के लिहाज़ से सहज नहीं होती। यहाँ तक कि अखबारों में छपने वाली सरकारी सूचनाओं और विज्ञापनों में भी इसी तरह की हिन्दी का उपयोग किया जाता है, हालाँकि, इनका उद्देश्य साधारण जन तक अपनी बात पहुँचाना होता है। हम जानते हैं कि इस तरह से गढ़ी गई हास्यास्पद हिन्दी, जैसे कि लौह पथ गामिनी (लोहे के मार्ग पर चलने वाली, यानी, ट्रेन), के कई उदाहरण औपचारिक-अनौपचारिक सार्वजनिक चर्चाओं में अनेकों बार दिए जा चुके हैं।

आधिकारिक क्षेत्र में इस्तेमाल की जाने वाली हिन्दी की विशेषताएँ क्या हैं? कौन-सी वे बातें हैं जो इस हिन्दी को असंगत और भारी-भरकम बनाती हैं? यह सिर्फ शब्दावली की बात नहीं है (जो अधिकांशतः संस्कृत मूल के शब्दों से बनती और प्राप्त की जाती है), पर इस हिन्दी की वाक्य संरचना भी बनावटी होती है क्योंकि यह अकसर अँग्रेज़ी का शाब्दिक अनुवाद होता है। हिन्दी में अनुवाद करते वक्त मूल सामग्री या रचना के प्रति वफादार रहने पर इतना ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है कि उस अनुवाद की भाषा और लिपि क्रमशः हिन्दी और देवनागरी होने के बावजूद उसका वाक्य विन्यास अनिवार्यतः अँग्रेज़ी का ही बना रहता है।

इसके कारण भाषा बनावटी, भारी-भरकम और हिन्दी बोलने वाले किसी भी औसत मूलभाषी के लिए समझने में मुश्किल हो जाती है। यहाँ तक कि अँग्रेज़ी के 'फॉर' जैसे सरल शब्द के लिए हिन्दी में 'के लिए' की बजाय 'हेतु' का उपयोग किया जाता है। कुछ मिलती-जुलती स्थिति अकादमिक तकनीकी शब्दावली की भी है। हिन्दी को आधुनिक अकादमिक विमर्श और ज्ञान मीमांसा के नए क्षेत्र के हिसाब से सक्षम करने के लिए लाखों नए शब्द गढ़े गए और यह प्रक्रिया अब भी जारी है। लेकिन, नए शब्द बनाते समय हमेशा ही संस्कृत शब्दों का सहारा लेने की नीति अपनाई जाती रही है भले ही हिन्दी, उर्दू, अँग्रेज़ी या 'बोलियों' के रूप में जानी जाने वाली भाषाओं में बेहतर विकल्प मौजूद हों जिनका भाषा के मुहावरे के साथ

तालमेल हो और जो समझने में भी आसान हों। उदाहरण के लिए, 'परफॉर्मिंग आर्ट्स' को परिमार्जन कलाएँ कहना बिरले लोगों को ही समझ आ पाएगा। हम इन्हें मंचन कलाएँ क्यों नहीं कह सकते जो पाठक को पढ़ने में कुछ परिचित-सा लग सकता है, क्योंकि अगर सभी नहीं, तो भी इस तरह की अधिकांश कलाएँ मंच पर ही प्रदर्शित की जाती हैं (भले ही यह शाब्दिक और सटीक अनुवाद न हो)! सटीकता और लोगों तक बात पहुँचाने की क्षमता के बीच सन्तुलन ज़रूरी है। लेकिन औपचारिक क्षेत्र में अधिकांशतः तत्सम शब्दों को ही 'मानक' के रूप में स्वीकार किया जाता है।

सरकारी हिन्दी

'मानक' और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी की धारणा सिर्फ आधिकारिक और अकादमिक क्षेत्रों तक सीमित नहीं है; शिक्षा तंत्र पर इसके प्रभुत्व का शैक्षणिक दृष्टिकोणों और शिक्षण, दोनों पर ही बहुत गहरा नकारात्मक असर पड़ा है। पढ़ने-पढ़ाने का कोई भी अच्छा तरीका वह है जो विद्यार्थी का पहले से हासिल ज्ञान से सम्बन्ध जोड़े। सीखने की प्रक्रिया में विद्यार्थियों की सक्रिय भूमिका होती है और "वे अपने पहले से मौजूद विचारों को नए विचारों के साथ जोड़कर खुद अपने ज्ञान का सृजन करते हैं" (एन.सी.ई.आर.टी. 2005:17)।

जो हम जानते हैं और जो हमें जानने की ज़रूरत है, यदि उनमें बहुत बड़ा अन्तर हो तो ज्ञान में वृद्धि नहीं हो सकती; ऐसा सीखना, ज़्यादा-से-ज़्यादा, बिना समझे याद करने जैसा होगा, और इसे सही अर्थों में सीखना नहीं कहा जा सकता। यही बात भाषाओं के सीखने-सिखाने की प्रक्रिया पर लागू होती है। कक्षा में पढ़ने-पढ़ाने के दौरान इस्तेमाल की जाने वाली हिन्दी, पाठ्य पुस्तकों में इस्तेमाल की जाने वाली हिन्दी, और वह हिन्दी जिसे हम बच्चों को सिखाना चाहते हैं, वही शुद्ध और 'ऊँचे स्तर' की हिन्दी होती है जिसमें तत्सम शब्दों की भरमार होती है और उर्दू के शब्दों से परहेज़ किया जाता है। और इस वजह से भाषा का सौन्दर्यबोध, लय और संप्रेषण क्षमता खत्म हो जाती हैः यह हिन्दी विभिन्न जीवन क्षेत्रों में विद्यार्थियों द्वारा कही-सुनी जाने वाली हिन्दी से बिलकुल ही अलग होती है।

निश्चित ही, किसी भाषा के बहुत से रूप, शैलियाँ और चलन होते हैं, और यह भी एक ऐसी शैली या चलन है जिससे धीरे-धीरे विद्यार्थियों को परिचित होना चाहिए। लेकिन इसका तरीका ऐसा होना चाहिए कि बच्चों के दिमागों में चीज़ों को ज़बरदस्ती ठूँसे बिना ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ा जाए। परन्तु एक अकेली पाठ्य पुस्तक के माध्यम से विद्यार्थियों को दिए जाने वाले सीमित पाठों की भाषा की उबाऊ प्रकृति उन्हें भाषा की समृद्धि और उसके सौन्दर्यबोध से वंचित कर देती है। इससे न सिर्फ विद्यार्थियों के

भाषाई ज्ञान पर बहुत बुरा असर पड़ता है, बल्कि उनके दिमाग में यह बात भी घर कर जाती है कि हिन्दी पढ़ना कभी भी आनन्ददायी नहीं हो सकता। अन्ततः इस भाषा के प्रति उनमें गहरी अरुचि पैदा हो जाती है और वे इसके प्रति सशंकित से हो जाते हैं।

अब फिर से उस सरकारी हिन्दी की बात करें जिसका बहुत मज़ाक बनाया जाता है। इसमें बहुत बदलाव लाने की ज़रूरत है ताकि यह लोगों की बोलचाल की भाषा के नज़दीक आ सके। हाल ही में, 26 सितम्बर 2011 को आधिकारिक भाषा विभाग के सचिव द्वारा सभी सम्बन्धित विभागों को एक परिपत्र भेजा गया जिसमें उन्हें सरकारी कामकाज में आसान और स्वाभाविक हिन्दी का इस्तेमाल करने के निर्देश दिए गए। इस बात का स्वागत किया जाना चाहिए कि सरकार इस ज़रूरत के प्रति सजग हो गई है। और जैसा कि इस पत्र में उल्लेख है, इस तरह के आदेश लगभग तीन दशकों से कई बार जारी किए जाते रहे हैं। फिर ऐसा क्यों है कि आधिकारिक हिन्दी अभी भी बहुत अधिक संस्कृतनिष्ठ, नीरस और जटिल बनी हुई है?

किसी भी समाज में भाषा हमेशा से ही एक राजनैतिक मुद्दा रही है। यह वर्ग सोपानक्रम को बनाए रखने का एक प्रभावशाली हथियार है। एक समय हमारे देश में हिन्दी के ऐसे 'पक्षधर' थे जो संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के 'राजनैतिक-सांस्कृतिक हथियार' के माध्यम से शासक वर्ग बनने के मंसूबे रखते थे (राय 2000: 8)। और आज, उसी हिन्दी को इस्तेमाल करते रहने की हठ की वजह से जिसकी साहित्यिक दुनिया में और लोगों के रोज़मर्रा के जीवन के भाषाई क्षेत्र में कोई प्रासंगिकता नहीं है, यह भाषा अँग्रेज़ी के वैश्विक साम्राज्यवाद की चुनौतियों

का सामना करने में असमर्थ है।

एक तरफ हिन्दी सत्ता संघर्ष का एक स्रोत रही है, और अभी भी है, और दूसरी तरफ राष्ट्रवाद के नाम पर संस्कृतनिष्ठ हिन्दी (या उस लिहाज़ से कहें तो अन्य भारतीय भाषाओं) की वकालत करना एक ऐसा दिखावा है जिसके द्वारा यथा स्थिति बनाई रखी जा सके और यह साबित किया जा सके कि हिन्दी का जटिल चरित्र साफ, सुबोध और उपभोक्ता के लिए इस्तेमाल करने में आसान अँग्रेज़ी का मुकाबला नहीं कर सकता। मौजूदा आधिकारिक सोच कोई 1961 के बाद की घटना नहीं है जब वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग बनाया गया था जिसका उद्देश्य था हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का प्रचार और प्रसार करना। इसकी जड़ें स्वतंत्रता-पूर्व युग के राष्ट्रवाद और एक राष्ट्रीय भाषा के 'रूमानी-राष्ट्रीय' विचार में थीं। यद्यपि कई लोगों द्वारा हिन्दी को इस भूमिका के लिए सबसे उपयुक्त भाषा माना गया था, पर यह हिन्दी किस तरह की होगी, यह बहस का मुद्दा था। जहाँ गाँधी, नेहरू आदि ने 'लोक हिन्दी' की वकालत की जिसकी विशेषताएँ थीं 'अन्य भाषाओं के शब्दों का खुलकर इस्तेमाल, उसका लचीलापन, उसकी स्थानीय संवेदनशीलताएँ, उसकी असीमित भौगोलिक और सामाजिक पहुँच' (राय 2000: 109), वहीं अन्य लोगों ने लगातार ऐसी *राष्ट्रभाषा* हिन्दी का प्रचार करने की कोशिश की जिसकी विशेषताएँ थीं 'उसकी एकरूपता, और स्थानीय चलन से अछूतापन' (पूर्वोक्त 2000: 109)।

अन्ततः, लोक हिन्दी या हिन्दुस्तानी को संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ने बेदखल कर दिया। बाद में, भाषा पर बनी संविधान सभा की उप-समिति की अनुशंसाओं में देवनागरी या फारसी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दुस्तानी को राष्ट्रीय भाषा तथा अँग्रेज़ी को दूसरी आधिकारिक भाषा के रूप में चुना गया। लेकिन इस बात का असहनशील समूह ने पुरज़ोर विरोध किया, जिसका कहना था कि सिर्फ हिन्दी और सिर्फ देवनागरी को चुना जाए। आखिरकार, यह समझौता किया गया कि हिन्दी आधिकारिक (राष्ट्रीय नहीं) भाषा रहेगी और अँग्रेज़ी संविधान के अस्तित्व में आने के बाद 15 वर्षों तक आधिकारिक कामों के लिए उपयोग की जाएगी, यानी 26 जनवरी 1965 तक।

निहितार्थ

यदि हम आधिकारिक भाषा विभाग के निदेश को बारीकी से समझें, तो इसमें कई समस्याएँ दिखाई देती हैं, भाषा की समझ को लेकर, जैसे कि वह इस पत्र से ज़ाहिर होती है, और हिन्दी भाषा के लिए इसके दीर्घकालिक निहितार्थों को लेकर, अगर इसे कट्टरता से लागू किया जाता है। साथ ही, यह पत्र उन मुद्दों पर बहस और चर्चा करने की गुंजाइश पैदा करता है जिनके बारे में लोगों का

दृष्टिकोण अस्पष्ट-सा है। पहले तो इस पत्र में यह कहा गया है कि किसी भी भाषा के दो स्वरूप होते हैं: 'साहित्यिक भाषा और कामकाजी भाषा'। "यदि साहित्यिक शब्दों को कामकाजी उपयोग में लिया जाए, तो लोगों की उस भाषा में दिलचस्पी खत्म हो जाती है।" लेकिन हम यह जानते हैं कि किसी भी भाषा के कई स्वरूप होते हैं जो उसके उपयोग के सामाजिक सन्दर्भ, उद्देश्य और कार्यक्षेत्र से जुड़े होते हैं। वर्ग, लिंग, शिक्षा इत्यादि के विभेदों से परे, हरेक व्यक्ति के पास अपने भाषा-भण्डार में सारी नहीं तो भी बहुत-सी विविधताएँ होती हैं, और एक ही व्यक्ति अलग-अलग क्षेत्रों में, अलग-अलग लोगों के साथ, अलग-अलग कामों और उद्देश्यों के लिए, अलग-अलग प्रकार की हिन्दी का उपयोग कर सकता है। पर इस पत्र में एकतरफा रूप से जिसे 'साहित्यिक' कहा गया है, वह दरअसल संस्कृतनिष्ठ शब्दजाल की भरमार है, और इसलिए वह शाब्दिक रूप से भी जटिल है और वाक्य रचना की दृष्टि से भी। वस्तुतः भाषा का साहित्यिक रूप अकसर समृद्ध, सौंदर्यबोध से भरा और सूक्ष्मभेदी होता है।

कौन बोलता है और क्या?

आसानी से समझ में आने वाली हिन्दी की वकालत करते हुए, इस पत्र में लिखा गया है कि यदि 'अन्तर्राष्ट्रीय रूप से लोकप्रिय भाषा अँग्रेज़ी' समय के साथ बदल सकती है, तो हिन्दी के कामकाजी रूप को भी अपने में बदलाव लाना चाहिए और बोलचाल की भाषा के करीब आना चाहिए। हालाँकि, ऊपर से सुनने में यह ठीक लगता है, इस पत्र में उद्धृत और समर्थित उदाहरण किसी और ही बात की तरफ इशारा करते हैं। इन उदाहरणों में, जो अखबारों और पत्रिकाओं के अनुल्लिखित स्रोतों से लिए गए हैं, 'अवेयरनेस', 'रेगुलर', 'प्रोग्राम', 'इंटरनेशनल बिज़िनस', 'हायर एजुकेशन' इत्यादी शब्दों को चुना गया है, हालाँकि, इनके हिन्दी समानार्थी शब्द यानी जागरूकता, नियमित, कार्यक्रम, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, उच्च शिक्षा काफी लोकप्रिय हैं या हिन्दी के लिखित रूप में अकसर इस्तेमाल किए जाते हैं।

इस पत्र में कहा गया है कि जब समकालीन हिन्दी पत्रिकाओं में इस तरह के वाक्य लिखे जाते हैं जैसे, "कॉलेज में एक रिफॉरेस्टेशन अभियान है जो रेगुलर चलता रहता है। इसका इस साल से एक और प्रोग्राम शुरू हुआ है जिसमें हर स्टुडेंट एक पेड़ लगाएगा," तो आधिकारिक हिन्दी को इस ढंग से ढालने से उसे लोकप्रिय बनाने में मदद मिलेगी। इसके अलावा, आधिकारिक भाषा विभाग का सुझाव है कि हिन्दी को सरल बनाने के लिए अनुवाद में भण्डार की जगह 'स्टोर', आवेदन की जगह 'एप्लाई', अनुच्छेद की जगह 'पैरा', दोपहर का भोजन की जगह 'लंच' को तरजीह दी जानी चाहिए।

वी नो वेरी वेल टुडे इज हिन्दी डे।

सर अपना सारा काम हिन्दी में करते हैं। इसके लिए इन्होंने दो दुभाषिए, चार अनुवादक और चार हिन्दी टायपिस्ट रखे हुए हैं।

इन उदाहरणों से जो बात निकलती है वो यह है कि यहाँ जिस 'बदलते माहौल' का ज़िक्र है वह वैश्वीकरण का युग है, जहाँ अँग्रेज़ी प्रभुत्वशाली ताकतों, बाज़ार और तकनीकी उन्नति की भाषा है। इस मुद्दे पर कि क्या और किस ढंग से अँग्रेज़ी एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है और इसके पीछे की पूरी राजनीति क्या है, भाषाविदों, शिक्षाशास्त्रियों और समाज विज्ञानियों द्वारा बहुत चर्चा की जा चुकी है, और इसके बारे में बहुत तर्क-वितर्क दिए जा चुके हैं (पेनीकुक 1994; फिलिपसन 1992)। यह दावा किया गया है कि वैश्विक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक ताकतें 'अँग्रेज़ी के इस्तेमाल का विस्तार करने और उसमें तेज़ी लाने के लिए निष्ठुरता और दृढ़ता के साथ' काम करती आ रही हैं (अग्निहोत्री 2008: 24)।

इस पत्र में कहा गया है कि यह हिन्दी के हित में है कि उसके मुहावरे

और अन्दाज़ में बदलाव किया जाए ताकि उसमें अन्तर्राष्ट्रीय शब्द भण्डार के प्रभावों को जगह दी जाए। इस समस्या की ज़िम्मेदारी उन शिक्षित सम्भ्रान्त वर्गीय लोगों के भाषाई व्यवहार और रवैये पर भी डाली जा सकती है जो भारतीय भाषाओं के मूल भाषी हैं; उन्होंने 'अपनी शाब्दिकता के संज्ञानात्मक खण्ड को तकनीकी-औद्योगिक दैत्य (यानी अँग्रेज़ी) के आगे गिरवी रख दिया है' क्योंकि उनमें से बहुत सारे लोग ऐसे हैं जिनका 'अँग्रेज़ी भाषा में निवेश है जिसे समस्त सम्भ्रान्त वर्ग के कामकाज और उसके पुनरुत्पादन के परिभाषक तत्व के रूप में पेश किया जाता है' (दासगुप्ता 2008: 71-72)। इस प्रकार, हिन्दी के विमर्शात्मक और शैली-विशिष्ट उपयोग के लिए विवेकपूर्ण और सृजनात्मक प्रयास किए बगैर हम इस दृष्टिकोण को मान लेते हैं कि हिन्दी में ऐसे पर्याप्त रूप से अच्छे विमर्श विकसित नहीं किए जा सकते जो आज की ज़रूरत हैं।

और फिर यह सवाल उठता है कि हम किसकी बोलचाल की भाषा की बात कर रहे हैं। हिन्दी पट्टी एक विशाल क्षेत्र में फैली हुई है जिसमें सात राज्य हैं और प्रत्येक क्षेत्र में इस भाषा की अपनी एक अलग तरह की बनावट है। जिस प्रकार की हिन्दी को सम्बद्ध मंत्रालय बढ़ावा देना चाहता है वह महानगर दिल्ली की बोलचाल की भाषा है और निश्चित ही वह सम्पूर्ण हिन्दी पट्टी का प्रतिनिधित्व नहीं करती। आप हिन्दी पट्टी के किसी भी भीतरी क्षेत्र में चले जाएँ और आपको ऐसे लोग मिलेंगे जो ऊपर उल्लिखित शब्दों को बोलचाल में भी उपयोग करते हैं। दिल्ली में भी, लोकसभा और राज्यसभा में होने वाली बहसें, राजनेताओं के वक्तव्य और अनायास भाषण, और टीवी चैनलों पर विशेषज्ञों के बीच होने वाली बहुत-सी पैनल वार्ताएँ इस बात का पर्याप्त सबूत हैं कि 'चैट स्टाइल' हिन्दी, यानी अँग्रेज़ी के साथ मिली-जुली हिन्दी, इस भाषा का अकेला लोकप्रिय प्रकार नहीं है। बोलचाल की भाषा एक व्यापक श्रेणी है और बातचीत का ढंग इसकी एक उप-श्रेणी है। साथ ही, किसी भाषा के बोले जाने वाले और लिखे जाने वाले प्रकारों में भी अन्तर होता है। भाषा शिक्षण के क्षेत्र में यह तथ्य सुस्थापित है कि किसी भाषा की विभिन्न शैलियों (विविधताओं) का अर्जन भाषा सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा है।

'सरल' और 'कठिन'

इस सन्दर्भ में हमारे लिए 'सरल' और 'कठिन' की धारणा पर भी बात करना ज़रूरी है। भाषा के बनावटीपन को छोड़ दें, तो क्या सरल है और क्या कठिन, यह अकसर उपयोग की बारम्बारता पर निर्भर करता है। मुद्रिका (दिल्ली की बस सेवा जो शहर के चारों ओर रिंग रोड के चक्कर लगाती है), आतंकवादी, विश्वविद्यालय (दिल्ली का एक मेट्रो स्टेशन), पहचान पत्र,

तत्काल सेवा (अतिरिक्त पैसा देने पर मिलने वाली रेल आरक्षण सुविधा) ऐसे कुछ शब्द हैं जो संस्कृत मूल के हैं, पर साधारणतः लोगों को ज्ञात हैं। अर्थ की दृष्टि से, शब्दों की स्वतःस्पष्ट प्रकृति भी शब्दों के अर्थ का अनुमान लगाने या उसका पता लगाने में मदद करती है। दिल्ली के एक अग्रणी प्राइवेट स्कूल में, जिसमें शिक्षा का माध्यम हिन्दी है (जैसा कि हिन्दी पट्टी के तमाम सरकारी स्कूलों में भी है), प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे गणित की शब्दावली को विभाज्यता नियम, गुणनफल आदि के रूप में समझते हैं क्योंकि उन्हें इन्हीं शब्दों के माध्यम से गणित के सिद्धान्तों से परिचय करवाया जाता है। इसी प्रकार, विज्ञान में, उनके लिए वाष्पीकरण उतना ही कठिन या सरल है जितना 'इवेपोरेशन'। इसके अलावा, अकसर शब्द अर्थ के लिहाज़ से खुद ही पारदर्शी होते हैंः विभाज्यता और गुणनफल में विभाजन और गुणा को पहचानने के लिए थोड़े से ही अवलोकन की ज़रूरत होती है। लेकिन भाषाई अवलोकन और अनुमान की योग्यताएँ विकसित करना हमारे भाषाई शिक्षण का हिस्सा नहीं है।

तो समस्या कहाँ है और इसे हल किस तरह किया जा सकता है?

यह एक स्थापित तथ्य है कि सभी भाषाएँ, वे भी जिन्हें बोलियाँ कहा जाता है, किन्हीं नियमों के तहत चलती हैं और उनमें यह सम्भावना निहित होती है कि वे अपने बोलने वालों की ज़रूरतों को पूरा कर सकें। किसी भाषा के समृद्ध होने की प्रक्रिया उसके व्यापक उपयोग के अनुपात में आकार लेती हैः कोई भाषा विभिन्न कार्यक्षेत्रों में जितनी अधिक उपयोग की जाएगी, अकादमिक और तकनीकी उन्नति के द्वारा पेश आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए वह उतनी ही अधिक सक्षम होती जाएगी। यह ज़रूरी है कि हिन्दी 'गरिमा' और 'मानक' के नाम पर अपनाए जाने वाले अड़ियलपन और निरर्थक जटिलता के बन्धनों को त्यागे, पर साथ ही हमें त्वरित, सतही उपाय नहीं ढूँढ़ने चाहिए।

हमें ज़रूरत है मौजूदा प्रशासनिक और अकादमिक शब्दावली की बेहद विवेचनात्मक समीक्षा की जहाँ हम न सिर्फ अँग्रेज़ी के शब्दों को शामिल करने के लिए तैयार रहें बल्कि उर्दू और हिन्दी पट्टी में बोली जाने वाली अन्य भाषाओं को जगह देने के लिए भी तैयार रहें। हिन्दी (और अन्य भारतीय भाषाओं) के उपयोग को बढ़ावा देना सिर्फ कर्मकाण्ड जैसा नहीं होना चाहिए जो बस हिन्दी दिवस, हिन्दी पखवाड़ा आदि तक सीमित रहे। दरअसल, यदि ऐसा दिवस होना ही है तो हिन्दी दिवस की बजाय भारतीय भाषा दिवस क्यों नहीं? सार्वजनिक, अकादमिक, और शैक्षणिक क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए ठोस और व्यावहारिक कार्यनीतियाँ बनायी जानी चाहिए। जहाँ तक शिक्षा

का सवाल है, तो शिक्षण और दृष्टिकोण, दोनों के सन्दर्भ में प्रबल सुधार किए जाना ज़रूरी हैं। लोग किसी भाषा की योग्यता के तभी कायल होंगे जब वह अनौपचारिक और औपचारिक, दोनों क्षेत्रों में उनकी ज़िन्दगी का हिस्सा बन जाए।

यदि ऊपिरिलिखित आदेशों में दिए गए निर्देशों को शाब्दिक और वास्तविक अर्थों में अपनाया गया तो उससे हिन्दी भाषा को उतना ही आघात पहुँचेगा जितना मानकीकरण और एकरूपता की ज़िद से पहुँचा है। आखिरकार, हिन्दी का अस्तित्व 'उच्च' हिन्दी और बाज़ारी हिन्दी की 'बेतुकी चचेरी बहन, ज़ी हिन्दी' की दो अतियों पर नहीं टिका हुआ है (राय 2000: 119)। हालाँकि, हमें आशंका है कि 'ज़ी हिन्दी' जल्दी ही 'जी-हिन्दी' यानी सरकारी हिन्दी बन जाएगी।

मुकुल प्रियदर्शिनी: प्राथमिक शिक्षा विभाग, मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय में काम करती हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: भरत त्रिपाठी: पत्रकारिता का अध्ययन। स्वतंत्र लेखन और द्विभाषिक अनुवाद करते हैं। होशंगाबाद में निवास।

सन्दर्भ:

अग्निहोत्री, आर.के. (2008): *लैंग्वेज, लिट्रेसी प्रेक्टिसिस एंड इंग्लिश* (भाषा, साक्षरता की पद्धतियाँ और अँग्रेज़ी); धेराम, प्रेमाकुमारी (सम्पा.) की पुस्तक *निगोशिएटिंग एम्पॉवरमेंट* में (हैदराबाद: ओरिएंट लांगमैन), पृष्ठ 24-40 ।

दासगुप्ता, प्रोबल (2008): *सस्टेनेबल स्नैरियोस इन इंडियन लैंग्वेज कल्टीवेशन* (भारतीय भाषा पालन में दीर्घकालिक दृश्य-योजनाएँ); धेराम, प्रेमाकुमारी (सम्पा.) की पुस्तक *निगोशिएटिंग एम्पॉवरमेंट* (हैदराबाद: ओरिएंट लांगमैन)।

एन.सी.ई.आर.टी. (2005): *नेशनल करिक्यूलम फ्रेमवर्क 2005* (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005), नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग, नई दिल्ली।

पेन्नीकुक, एलिस्टेयर (1994): *द कल्चरल पॉलिटिक्स ऑफ इंग्लिश एज़ एन इंटरनेशनल लैंग्वेज* (एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के तौर पर अँग्रेज़ी की सांस्कृतिक राजनीति) (लंदन लांगमैन)।

फिलिटन, रॉबर्ट (1992): लिंग्विस्टिक इम्पीरियलिज़्म (भाषाई साम्राज्यवाद), (नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)।

राय, आलोक (2000): *हिन्दी नेशनालिज़्म* (हिन्दी राष्ट्रवाद); (नई दिल्ली: ओरिएंट लांगमैन)।